<u>जैन दर्शन-बन्धन और मोक्ष</u>

(Bondage and Liberation)

By- Dr. Arun Kumar Sinha

Asso. Professor, Philosophy Department
Raja Singh College, Siwan
(For Part- 1 Hons./Subs. Students)

लगभग सभी भारतीय दर्शन बंधन और मोक्ष पर विचार करते हैं जैन दर्शन भी भारतीय दर्शन होने के कारण बंधन और मोक्ष पर विचार करता है भारतीय दर्शन में बंधन का अर्थ बार-बार जन्म ग्रहण करने से लिया जाता है और इसके विपरीत जन ग्रहण से छुटकारा पा लेना ही मोक्ष कहलाता है

जैन दर्शन के अनुसार बंधन और मोक्ष जीव का होता है अजीव का नहीं , क्योंकि जिसमें चेतना होगी उसे ही सुख, दुख या बंधन मोक्ष का अनुभव होगा।चेतना रहित तत्व के लिए दुख ,सुख कोई अर्थ नहीं होता जीव स्वभाव से स्वतंत्र एवं अनंत चतुष्टय से युक्त होता है, किंतु कर्मों के संयोग से वह बन्धन में पड़ जाता है ।बंधन और मोक्ष की तुलना बादलों से ढके हुए सूर्य से किया जाता है जिसका प्रकाश भी ढँक जाता है, किंतु जब बादल हट जाते हैं तब वह अपनी सहज रूप में प्रकाशीत हो जाता है। जिस समय बादलों से सूरज ढका रहता है , प्रकाश मात्र ढक जाता है नष्ट नहीं होता ।वैसे ही जब जीव कर्म रूपी बादलों से ढक जाता है तब उसका स्वाभाविक रूप छुप जाता है, उसका अनंत चतुष्टय नष्ट नहीं होता।

<u>बन्धन(Bondage)</u> - जैन दर्शन के अनुसार जीव का कर्मों के संपर्क में आना उसका बंधन है और कर्मों से संबंध विच्छेद हो जाना मोक्ष है। यह कर्म संपर्क, कर्म विच्छेद एक प्रक्रिया है जिसके चार स्तर हैं और जिन्हें तत्व माना गया है -आश्रव, बन्ध,संवर और निर्जरा। इनमें से प्रथम दो बंधन से और शेष दो मोक्ष से संबंधित हैं। कर्मों का जीव के निकट आना आश्रव है ,कर्मों के द्वारा जीव का प्रभावित हो जाना बंधन है ,कर्मों को जीव के द्वारा रोकना संवर और आए हुए कर्मों को भोगना निर्जरा है।इसे और स्पष्ट रूप में निम्न प्रकार से जाना जा सकता है :-

आश्रव - काय ,वचन और मन की क्रिया योग है ,वही आश्रव है। कर्म और जीव का संपर्क होना ही आश्रव कहा जाता है और संपर्क बनाने वाला योग ही होता है कर्म पोदगलिक तथा जीव चैतन्य होता है ऐसी स्थिति में जीव का कर्म से संबंध होना संभव नहीं है किंतु योग के कारण कर्म पुदगल जीव में प्रवेश कर पाते हैं ।आश्रव के दो भेद होते हैं - भावाश्रव तथा द्रव्याश्रव । कषाय आदि के प्राप्त होने के कारण जब जीव में मानसिक, वाचिक स्पंदन होने लगता है, तब कर्म पुद्गल जीव की ओर आकृष्ट होने लगते हैं और इसे ही भावाश्रव कहा जाता है। जब कर्म पुद्गल जीव तक पहुंचकर उससे संबंधित हो जाते हैं तब उसे द्रव्याश्रव कहा जाता है ।कषायों के कारण उत्पन्न भावश्रय की स्थिति वैसी है जैसे तेल युक्त शरीर और द्रव्याश्रव इस प्रकार है जैसे उड़ती हुई धूल का शरीर में चिपक जाना।

बन्ध - कषाय के संपर्क से जीव कर्म योग्य पुद्गलों को ग्रहण करता है, वह बन्ध है ।बन्ध में कर्म जीव को पूर्णता प्रभावित कर देता है इसमें जीव का स्वाभाविक रूप आच्छादित हो जाता है। बंधन के भी दो भेद किए जाते हैं - भाव बन्ध तथा द्रव्य बन्ध । भाव बन्ध के समय कर्म जीव से संबंधित नहीं हुआ रहता है मात्र कर्म पुद्गल को आकृष्ट करने वाला भाव ही बनाता है, उस समय भावाश्रय के कारण जो बन्ध बनता है उसे भाव बन्ध कहते हैं द्रव्याश्रव से जो बन्ध बनता है उसे द्रव्य बन्ध कहते हैं ।एक अन्य प्रकार से बन्ध के चार प्रकार बताए गए हैं - प्रकृति, स्थिति ,अनुभाव और प्रदेश ।इनमें से पहला और चौथा भोग पर अवलंबित है तथा दूसरा और तीसरा कषाय पर आश्रित हैं।

संवर - आश्रव का निरोध संवर है यहां से मोक्ष की प्रक्रिया प्रारंभ होती है जिसमें आते हुए नए कर्मों को रोकने का प्रयास होता है । इसके भी दो प्रकार हैं - भाव संवर तथा द्रव्य संवर।जब साधक उन प्रयत्नों के लिए उत्सुक होता है जिनसे नए कर्म रोके जाते हैं तो इसे भाव संवर कहते हैं एवम जब नए कर्मों का आना बंद हो जाता है तब इसे द्रव्य संवर कहते हैं ।

निर्जरा - संवर में आते हुए कर्मों को रोका जाता है किंतु जो कर्म आ गए होते हैं उन्हें फल रहित करना निर्जरा कहलाता है । इस स्थिति में साधक कैवल्य प्राप्त करके सर्वज्ञ हो जाता है ,उसे पूर्णानंद की उपलब्धि होती है। यह जीवन मुक्त या सदेह मुक्त की स्थिति होती है। निर्जरा का अर्थ है कर्म का नाश है और उससे होने वाला आत्मस्वरूप की उपलब्धि । निर्जरा का कारण तप को

माना जाता है ।तप के बारह भेद हैं अतः निर्जरा के भी बारह भेद माने जाते हैं ।तप को बाह्य और आंतरिक अंग के रूप में भी विभाजित किया गया है ।बाह्य अंग- अनशन ,आहार संयम, आसन प्रयोग, इंद्रिय संयम ,भिक्षाचारी ,रस परित्याग और आंतरिक अंग के रूप में हैं प्रायश्चित ,विनय, सेवा ,कायोत्सर्ग, स्वाध्याय और ध्यान इत्यादि । जिस प्रकार संवर आश्रव का विरोधी है उसी प्रकार निर्जरा बन्ध का विरोधी है।

मोक्ष(Liberation) - बार-बार जन्म ग्रहण करना और दु:खों को झेलना बन्धन है, तो बार-बार जन्म ग्रहण करने से छुटकारा पा जाना और आनन्द के स्थिति में आना मोक्ष है।जैन दर्शन में अन्य भारतीय दर्शनों की तरह जीवन का चरम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति है।जैन दर्शन में यह माना गया है कि जीव और पुदगल का सम्बन्ध बन्धन है और इसका पृथक हो जाना मोक्ष है।जीव बन्धन में कुप्रवृत्तियों के कारण ही पड़ता है।कुप्रवृत्तियों का कारण अज्ञान को माना गया है।अज्ञान का नाश ज्ञान से संभव है, इसे अपनाने के लिए आस्था का भाव होना आवश्यक हो जाता है।मोक्ष के लिए केवल इतना ही आवश्यक नहीं है बल्कि अपनी वासना,इन्द्रिय और मन को भी संयमित करना आवश्यक होता है।

उमास्वामी ने अपनी प्रसिद्ध कीर्ति तत्त्वार्थसूत्र के प्रथम सूत्र में ही कहा है :-

सम्यक- दर्शन -ज्ञान -चरित्राणि मोक्ष- मार्ग: ।

अर्थात सम्यक दर्शन(Right Faith) ,सम्यक ज्ञान (Right Knowledge) ,सम्यक चरित्र (Right Conduct) तीनों के सम्मिलित सहयोग से ही मोक्ष सम्भव है। यहाँ सम्यक का अर्थ जो अध्यात्म की ओर, आत्मसुधी की ओर, मोक्ष की ओर ले चलता हो से है।जैन दर्शन में बताया गया ये तीन मार्ग मोक्ष के लिए आवश्यक हैं, एक को छोड़कर और दूसरे को अपनाकर कोई व्यक्ति मोक्ष नहीं प्राप्त कर सकता।जैन दर्शन में इसे '**त्रिरत्न' (Three Jewels)** कहा गया है।जैन के अतिरिक्त अन्य भारतीय दर्शन में एक साथ तीन मार्ग को मोक्ष के लिए नहीं अपनाया गया है।मोक्ष को लेकर जैन का यह विचार अद्वित्य है जहाँ उन्होंने तीनों एकांगी मार्ग का समन्वय किया है।इन तीनों पर अलग-अलग विचार करना अपेक्षित है :-

सम्यक दर्शन(Right Faith) - तत्व के अर्थ के प्रति श्रद्धा सम्यक दर्शन है। यथार्थ रूप में पदार्थों की जानने की रुचि ही सम्यक दर्शन है ।तत्व सात माने गए हैं - जीव, अजीव, आश्रव, बन्ध, संवर ,निर्जरा तथा मोक्ष ।इन्हीं के अर्थ के प्रति श्रद्धा रखना सम्यक दर्शन समझा जाता है इसके दो प्रकार होते हैं - निसर्गज, अधिगमज तत्वार्थ के प्रति श्रद्धा जब सहज और स्वाभाविक ढंग से बिना किसी प्रयास से उत्पन्न होती है तब उसे निसर्गज कहते हैं जब श्रद्धा उपदेश आदी ,बाह्य निमित्त से उत्पन्न होती है तब उसे अधिगमज कहते है।

सम्यक ज्ञान(Right Knowledge) - सम्यक ज्ञान के पांच प्रकार हैं - मति ,श्रुत ,अवधी, मन:पर्याय और केवल। इनमें से प्रथम दो परोक्ष ज्ञान है तथा शेष तीन प्रत्यक्ष ज्ञान । जो ज्ञान इंद्रिय तथा मन की सहायता से प्राप्त होते हैं उन्हें परोक्ष ज्ञान करते हैं जिनका संबंध आत्मा से होता है अर्थात जो आत्मा के माध्यम से प्राप्त होते हैं उन्हें प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं ।

मती - इंद्रिय और मन की सहायता से प्राप्त होने वाला ज्ञान मति कहा जाता है जैसे देखना, सुनना ,स्वाद लेना इत्यादि ।

श्रुत - आप्त पुरुषों के वचन अथवा आचार्यों के वचन जिनमें हमारी आस्था होती है उसे श्रुत ज्ञान कहते हैं। अन्य परंपराओं में इसे शब्द ज्ञान भी कहा गया है इसके भी दो भेद हैं अंगप्रविष्ट यानी महावीर के वचन तथा अंगबाह्य अर्थात महावीर के अलावा जितनी भी जैन धर्म के पथ प्रदर्शक और आचार्य हो गए हैं उन सभी के वचन।

अवधि -द्रव्य का ज्ञान कराने वाला अवधी कहा जाता है इस के दो भेद होते हैं भव प्रत्यय और गुण प्रत्यय ।जो जन्म से प्रकट होता है उसे भव प्रत्यय तथा जो व्रत , अनुष्ठान आदि से उत्पन्न होता है उसे गुण प्रत्येक कहा जाता है।

मन:पर्याय - मन के पर्यायों को जानना मन:पर्याय ज्ञान कहलाता है। इसके भी दो भेद होते हैं- ऋजुमती और विपुलमती। ऋजुमती से विपुलमती अधिक विशुद्ध होता है तथा मन के सूक्ष्म परिणामों को जानता है।

केवल - यह सर्वज्ञता की स्थिति है यहां ज्ञान और ज्ञाता अपने पूर्ण विकास पर होता है यहां सभी ज्ञान मिलकर एक हो जाते हैं इसीलिए इसे केवल ज्ञान कहा गया है **सम्यक चरित्र (Right Conduct)** - संवर और निर्जरा के निमित्त सम्यक दर्शन तथा सम्यक ज्ञान के आधार पर हमारा जो आचरण होता है उसे सम्यकचरित्र कहा जाता है। सम्यक चरित्र मानव को मन, वचन और कर्म पर नियंत्रण रखने का निर्देश देता है।सम्यक चरित्र मोक्ष मार्ग का एक महत्वपूर्ण कड़ी है।उमास्वामी ने कहा है कि यह संवर, गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा तथा चरित्र से प्राप्त होता है।

श्रद्धा एवम विवेक के आधार पर मन, वचन और कर्म को कुमार्ग पर चलने से रोकना, उसे सन्मार्ग पर ले चलना गुप्ति है । गुप्ति तीन हैं - कायगुप्ती अर्थात शरीर का संयम ,वाग्-गुप्ति अर्थात वाणी पर नियंत्रण ,मनोगुप्ति अर्थात मानसिक संयम।

विवेक युक्त प्रवृति को समिति कहा गया है।इसके पाँच भेद हैं - ईर्या समिति - सावधानी से चलना जिससे किसी प्राणी को कष्ट ना हो ।भाषा समिती- सत्य हितकारी और संदेह रहित बोलना ।एषणा समिति -जीवन यात्रा के लिए आवश्यक तथा निर्दोष साधनों की प्राप्ति के लिए सावधानी के साथ प्रयास करना। निक्षेप- किसी भी वस्तु को अच्छी तरह देखकर तथा परिमार्जित करके लेना और रखना ।उत्सर्ग - अनुपयोगी वस्तुओं का विसर्जन देखभाल कर जीव रहित स्थान में करना ।

व्रत के पाँच प्रकार बताये गए हैं -अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ।इसे पंच महाव्रत(Five Great Vows)भी कहा जाता है।पंच महाव्रत को सभी आचरणों से महत्वपूर्ण माना गया है।

अहिंसा - हिंसा का परित्याग अहिंसा कहलाता है।किसी प्राणी को किसी तरह का कष्ट न पहुंचाना अहिंसा है।जीवों के प्रति प्रेम का भाव रखना भी अहिंसा के लिए आवश्यक माना गया है।अहिंसा का पालन मन, वचन और कर्म से करना पड़ता है।

सत्य - असत्य का परित्याग ही सत्य है।इसे भी मन, वचन और कर्म से करना होता है।यह प्रिय और हितकारी भी होना चाहिए अर्थात मिथ्या वचन का परित्याग तो करना ही है साथ ही साथ मधुर वचनों का प्रयोग करना है।

अस्तेय - बिना किसी व्यक्ति के स्वीकृति के उसका कोई वस्तु न लेना अर्थात चोरी न करना अस्तेय कहलाता है।जैनियों ने माना है कि किसी व्यक्ति का धन चुराना उसके जीवन को चुरा लेने के बराबर है।

ब्रह्मचर्य - वासनाओं का त्याग करना ब्रह्मचर्य कहलाता है।समान्यतः ब्रह्मचर्य का अर्थ इन्द्रयों पर रोक से लगाया जाता है,परन्तु जैन दर्शन में इसका अर्थ सभी कामनाओं का परित्याग से है।

अपरिग्रह - सभी सांसारिक वस्तुओं का त्याग अपरिग्रह कहलाता है।बन्धन का कारण सांसारिक वस्तुओं के प्रति आसक्ति को माना गया है इसलिये अपरिग्रह अर्थात सांसारिक वस्तुओं से निर्लिप्त रहना मोक्ष के लिए आवश्यक हो जाता है।

मोक्ष की अवस्था आत्मा अपनी पूर्णताओं को प्राप्त कर लेती है और उसे अनन्त चतुष्ट्य -अनन्त ज्ञान, अनन्त शक्ति, अनन्त दर्शन और अनन्त आनन्द की भी प्राप्ति होती है।